सूक्ष्मजीवविज्ञान एवं चिकित्साशास्त्रः उत्कर्ष के सोपान

नैनेश कुमार द्विवेदी
स्नातकोत्तर छात्र (द्वितीय वर्ष), शूक्ष्मजीवविज्ञान,
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

चिकित्साशात्र के विगत सौ वर्षों के इतिहास पर विहंगम दृष्टिपात करने से जो तस्वीर हमारे सामने आई उसके अनुसार बीसवीं सदी के शुभारंभ में धरती का सबसे बुद्धिमान और शक्तिमान प्राणी मनुष्य अपनी हजारों साल की यात्रा पूरी करने के बावजूद अनेक प्रकार के जानपदिक व्याधियों से ग्रसित दिखाई दे रहा था। 'पशेम शरदः शतं, जीवेम् शरदः शतं, श्रुण्याम् शरदः शतं' के अनुसार सौ वर्षो की आरोग्य जीवन की कल्पना निराधार साबित हो रही थी और असाध्य रोगों की जड़ता, मानव मात्र की दुःखद व्यथा और भविष्य की अंधकारमय परिकल्पना एक डरावनी तस्वीर प्रस्तुत कर रही थी। यह एक नई शताब्दी का प्रारम्भ था, जब दुनिया की आबादी मात्र 165 करोड़ थी। मानव की औसत उम्र 25 साल से भी कम थी। अस्सी प्रतिशत मौतें आये दिन प्लेग, हैजा (अतिसार), पीलिया(जांडिस), तपेदिक, डिप्थिरिया, टायफॉयड, मलेरिया, पेचिस, टिटनेस, काली खांसी, खसरा सरीखी संक्रामक बीमारियों से होती थीं। देश गुलाम था। अंग्रेजों का शासन था। वैसे तो इन शासकों ने भारतीय स्वास्थ्य सेवाओं 'इंडियन मेडिकल सर्विसेज' की स्थापना तो कर दी थी, पर स्थितियाँ-परिस्थितियाँ बहुत खराब थी। अनेक महामारियों के कारण मानवता कराह रही थी। पुरुषों की औसत आयु मात्र 22 वर्ष और स्त्रियों की 23 वर्ष थी। लोग भारी संख्या में दुनिया से विदा हो रहे थे। जन्म दर प्रति हजार 49 होते हुए भी देश की आबादी मात्र लगभग 24 करोड़ थी। जन स्वास्थ्य की दशा अकल्पनीय थी। देश में जन्में एक हजार बच्चों में से 232 बच्चे अपना पहला जन्म-दिन मनाने से पहले ही दुनिया से कूच कर जाते थे। बच्चों का पहला जन्म-दिन यदि खुशी से बीत भी जाता, तो भी माता-पिता बच्चे के प्रति आश्वस्त नहीं हो पाते थे। प्रसूति की पीड़ा भयानक तथा त्रासदी लिए होती थी। प्रसूति के समय अनेक माताएँ अपने बच्चे को अनाथ-बेसहारा छोड़ कर काल-कवलित हो जातीं। और तो और, पीने का साफ़ पानी, संतुलित पौष्टिक भोजन, साफ़-सुथरे घर वाली जीवन की बुनियादी जरुरतें भी कुछ नसीब वालों को ही मयस्सर थीं। अकाल पड़ता और महामारी फैलती, तो गाँव के गाँव उजड़ जाते। चुनौतियाँ बेसुमार थीं, आंसू हजार थे और समाधान नहीं के बराबर। यह वह समय था, जब चिकित्साविज्ञान भी एक नन्हें शिशु के समान था। अधिकांश संक्रामक रोग अबूझ और असाध्य बने हुए थे। हलांकि सदी के शुरु में ही कुछ वैज्ञानिकों, जैसे- लुई पाश्चर, एडवर्ड जेनर, राबर्ट कांक, रोनाल्ड रॉस ने क्रमशः रैबीज, तपेदिक (टी.बी.), मलेरिया-जैसी बीमारियों के विरुद्ध जंग छेड़ दी थी। परन्तु, अनेकों असाध्य रोग अभी भी ऐसे थे, जिन पर काबू पाना आसान नहीं था। रोगों के अनुपात में दवाओं का अत्यन्त अभाव था।

यदि थोड़ा और पीछे जाकर देखें तो उन्नसवी सदी के आखिरी दो दशकों की तस्वीर कुछ ऐसे दिखाई देती है, जिसमें कई प्रमुख बीमारियों, जैसे- तपेदिक, कुष्ठ, गोनोरिया, स्टेफ़िलोकोकस, डिप्थिरिया, टिटनेस, न्यूमोकोकस और माल्ट फ़ीबर के कारक जीवाणुओं (बैक्टिरिया) की खोज हो चुकी थी। यह सूक्ष्मजीवविज्ञान का श्रीगणेश था। परन्तु सर्वसुलभ प्रभावी चिकित्सा का अभी अत्यन्त अभाव था। बीसवीं सदी के प्रारम्भ होते ही विषाणुओं (वाइरसों) की खोज का नया दौर भी प्रारम्भ हो गया था और सूक्ष्मजीवविज्ञान शनैः-शनैः गति पकड़ने लगा था। सन् 1902 में येलो फ़ीबर, सन् 1909 में पोलियों और इनके बाद एक-एक करके

चेचक, चिकेन-पॉक्स, एन्फ्लुएंजा, खसरा हिपेटाइटिस के विषाणुओं का पता लगते देर न लगी। सन् 1905 में सिफलिस का रोगकारी जीवाणु भी खोज लिया गया। संक्रामक रोगों का वास्तविक कारण सुराग लगाना सचमुच समय की बहुत बड़ी उपलब्धि थी। फिर इन्हीं से बचाव और उपचार की नई युक्तियों की जीवनदायिनी खोजें प्रारम्भ हुईं। सन् 1928 में एलेक्जेन्डर फ्लेमिंग औड़ फ्लोरे ने पेनिसिलीन की खोज करके हमें पहला एंटीबायोटिक दिया। सन् 1939 में सल्फा दवाओं की शुरुआत हुई, फिर सन् 1944 में स्ट्रेप्टोमाइसिन और 1951 में आई.एन.एच. के इज़ाद होने से तपेदिक भी लाईलाज़ न रहा। हमारी आली उम्मीदों का कारवां आगे बढता रहा। अब तकरीबन हर साल नई-नई प्रतिजैविक (एंटीबायोटिक) सैकड़ों दवाईयाँ बाज़ार में सुलभ हो रही हैं। शूक्ष्मजीवविज्ञान का दायरा बढ़ता गया।

रोगाणुओं से बचाव के लिए टीकों का सिलसिला शुरु हुआ और एडवर्ड जेनर ने 18वीं सदी में चेचक के विरुद्ध जो टीका तैयार करके चमत्कार किया था, उसमें भी लगातार बढ़ोत्तरी हुई। सन् 1898 में टायफॉयड, 1921 में बी.सी.जी., 1930 में काली खांसी, 1936 में येलो फ़ीवर, 1955 में पोलियों, 1960 में एन्फ्लुएन्जा, 1970 में मम्प्स, मीजल्स व रुबेला और हाल के वर्षों में हिपेटाइटिस ए. और बी. के रोग-रोधी टिके तैयार हुए। पुराने टीकों की जगह कई नए और पहले से अधिक प्रबल तथा प्रभावी टीके बाजार में आ गए। यह रोग निरोधी टीकों का ही कमाल था कि 8 मई, 1980 को विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा चेचक के विरुद्ध चल रहे महासंग्राम में विजय की घोषणा कर दी गई। मलेरिया उन्मूलन के अभियान भी चले और इसके उन्मूलन की भी घोषणाएँ हुईं, परन्तु मलेरिया के जीवाणु, जो प्रायः मच्छरों के एक विशेष प्रजाति द्वारा पैदा होते थे, में अप्रत्याशित रुप से विकसित दवाओं के प्रति प्रतिरोध क्षमता विकसित हो गए। अतः इन पर काबू नहीं पाया जा सका। इस दिशा में हो रहे नित नए आविष्कारों द्वारा इस बीमारी से होने वाली मृत्यु-दर में भारी कमी दर्ज की गई। आज़कल पृथ्वी से पोलियों उन्मूलन की कोशिशें जारी हैं, और अब वह दिन ज्यादा दूर नहीं, जब इस असाध्य रोग के विरुद्ध भी हम जंग फतह कर लेंगे।

इन महा उपलब्धियों के बावजूद संक्रामक रोगों के खिलाफ अभी जंग खत्म नहीं हुई है। सन् 1973 से लेकर अब तक रोगकारक सूक्ष्मजीवों की 30 से अधिक नई नस्लें पहचानी जा चुकी हैं। इनमें सबसे खतरनाक 'एड्स' पैदा करने वाला 'एच.आई.वी.' नामक विषाणु भी शामिल है। कुछ पुराने संक्रामक रोग फिर से सिर उठाने लगे हैं। बड़े ही चिन्ता का विषय है कि तपेदिक, मलेरिया परजीवी, गोनोरिया टॉयफायड, स्ट्रेप्टोकोकाई आदि रोगकारी सूक्ष्मजीवों ने अनेक औषधियों के विरुद्ध प्रतिरोध (रेसिस्टेंस) विकसित कर लिया है। उनकी नई नस्लें पुरानी औषधियों को ठेंगा दिखाने की ताकत रखती हैं। इसलिए नई प्रभावशाली औषधियाँ विकसित करना जरुरी है। विषाणुओं के विरुद्ध विषाणुरोधी औषधियाँ खोजी जा रही हैं। अधिक सक्षम रोगनिरोधी टीकों की खोज का काम भी जोर-शोर से जारी है। इनमें दो बिल्कुल नई दिशाएँ अपनाई जा रही हैं। एक तरफ कुछ वनस्पतियों के रोग प्रतिरोधी गुण आजमाए जा रहे हैं, तो दूसरी तरफ कुछ जीवाणुओं की पुनर्योगज (रिकाम्बिनेंट) 'डी.एन.ए.' तकनीक से नस्ल बदल कर प्रयोगशालाओं में उनका संवर्धन कर टीके तैयार करने की कोशिशें की जा रही हैं।

अन्य औषधियों को लेकर भी निरंतर नई नई खोज़े हो रही हैं। चिरकारी रोगों का उपचार आज़ की बड़ी चुनौती है। बहुत सी बीमारियों का कोई स्थायी समाधान भले ही न निकल सका हो, लेकिन एक बात तो बिल्कुल ही साफ है कि दवाओं से उनकी गंभीरता पर नियंत्रण रख पाना आसान हो सका है। बीमारियों की बाबत दिनों-दिन लोगों की समझ में भी सुधार आ रहा है। ज्ञान का आलोक बचाव के नए द्वार खोलने में सहायक है।

मानव जिस औद्योगिक क्रांति की चकाचौंध में गुम होकर प्रकृति के मूलभूत नियमों से दूर भटका था, उसके बारे में उसे बताया तथा आगाह किया जा रहा है। जीवन के तौर तरीकों, खान-पान, रहन-सहन और चाल-चलन में किस तरह की गलतियां रोग पैदा करती हैं, और क्या करने धरने से शरीर और मन स्वस्थ-स्फूर्त रह सकते हैं, इस गूढ विषय पर गहरी जाँच-पड़ताल की जा रही है। विगत 20वी सदी के जानपदिक रोगों को रोकने का यही सबसे फलदायी उपाय है; वरना दिल के 'कोरोनरी धमनी रोग', 'मोटापा', 'अवसाद', 'तनाव' और 'कैंसर' जैसे रोगों के चक्रव्यूह से उबर पाना दुर्गम दिखाई देता है।

कहा है 'एक परहेज़ न सौ इलाज़' अर्थात इलाज़ से कहीं ज्यादा परहेज़/बचाव की आवश्यकता है। स्वस्थ जीवन पद्धति अपनाकर ही नित नई पैदा हो रही बीमारियों की बाढ रोकी जा सकती है। मुस्तकिल अथवा स्थाई समाधान न तो 'बाई-पास सर्जरी' अथवा 'एन्जीयोप्लास्टी' में है, और न ही अभी जीन प्रत्यार्पण तथा अंगप्रत्यारोपण में ही है। जहॉ तक 'अंगप्रत्यारोपण' तथा 'जीन प्रत्यार्पण/ (ट्रांसफ़र) आदि का प्रश्न है, तो ये तकनीकें वास्तव में अभी आम जनता की पहुँच से बाहर हैं। इनके बारे में पढना और जानना कौतूहल का विषय तो हो सकता है, पर ऐसा लगता है कि ये कुछ धनाड्य व्यक्तियों के मतलब के सिवाय और किसी अन्य के प्रयोजन की नहीं।

विगत सदी चिकित्साविज्ञान के लिए तकनीकी-कौशल की रही है। इसकी प्रगति ने अतुल उपलब्धियों की यात्रा तय की है। इस तरह इसके हाथ अनगिनत नवीन तकनीक आई हैं। महाभारत में संजय ने हस्तिनापुर बैठे-2 जिस प्रकार से धृतराष्ट्र को कुरुक्षेत्र के युद्ध क्षेत्र का पूरा आँखों देखाहाल सुनाया था, उसी तरह 'टेलीमेडिसिन' की चमत्कारी तकनीक द्वारा आज़ सुदूर स्थान में बैठे मरीज का पूरा हाल अपने कक्ष में बैठे-बैठाये चिकित्सा विशेषज्ञ आसानी से जान सकता है। 'एक्स-रे', 'अल्ट्रासाउण्ड', 'सीटी स्कैन', 'चुम्बकीय नाद प्रतिबिंबन (एम.आर.आई./ मैग्नेटिक रेजोनेंस इमेजिंग)' न्यूक्लियर मेडिसिन की मदद से अब शरीर के किसी भी अंग की तस्वीर ली जा सकती है। नाभिकीय चिकित्सा पद्धति के जन्मदाता जार्ज हेवसे हैं। इन्होंने 'रेडियो ट्रेसर' सिद्धांत का सन् 1944 में प्रतिपादन किया था जिसके लिए उन्हें नोबेल पुरस्कार से भी नवाज़ा गया था। इस तकनीक में विशेषतया 'रेडियो सक्रिय समस्थानिकों' की मदद ली जाती है और इनकी इसमें विशेष भूमिका होती है। फॉस्फोरस (^{32}P) का 'ल्युकेमिया' अर्थात रक्तस्वल्पता, लोहा/ आयरन (^{51}Fe) का रक्तकणों के उत्पादन तथा आयोडीन (^{131}I) का अवटु ग्रंथि (थायरायड) के इलाज़ में प्रयोग किया जाता है। सन् 1958 की 'रेक्टीलीनियर स्कैनर' तथा 'गामा कैमरे' की खोज़ ने ही 'रेडियोन्युक्लॉइड प्रतिबिंबन (इमेजिंग)' का रास्ता साफ किया। जिसके फलस्वरुप आज़ स्थिति बदली सी नज़र आ रही है। आलम यह है कि रेडियो सक्रिय समस्थानिकों का 'वृक्क/किडनी' की बीमारियों के अध्ययन (नेफ़्रोलोजी), यकृत (जिगर) की बीमारियों के अध्ययन (हिपेटोलोजी), दिल के बीमारियों के अध्ययन (कार्डियोलोजी) तथा कैंसर की बीमारियों के अध्ययन (ओन्कोलोजी) आदि अनेक क्षेत्रों में बहुलता से किया जा रहा है।

शल्यचिकित्सा (सर्जरी) में भी निरंतर प्रगति हुई है और जटिल से जटिल आपरेशन आसान होते जा रहे हैं। 'टेलीसर्जरी' तक की बातें की जा रही हैं, जिसमें एक 'यांत्रिक चिकित्सीय रोबोट' और 'टेलीविजन कैमरे' के जरिए संपूर्ण शल्य-चिकित्सा सुदूर बैठे एक चिकित्सा-विशेषज्ञ द्वारा अन्यत्र स्थित किसी रोगी पर संपन्न की जा सकती है। 'जीन थेरेपी' भी एक नया आविष्कार है। इसके द्वारा असाध्य अनुवांशिक बीमारियों को ठीक किया जा सकता है। फिर भी इनके इस्तेमाल द्वारा सर्व-सुलभ चिकित्सा आज़ भी सपना है। भविष्य का चिकित्साविज्ञान अनेकों

महत्वपूर्ण जिज्ञासाओं से भरा पड़ा है। आने वाले दिनों में 'कम्प्युटराइज्ड टोमोग्राफी/सीटी' एवं 'चुम्बकीय नाद प्रतिबिंबन' के अतिरिक्त 'पाजिट्रान एमिशन टोमोग्राफी' (पीईटी), जिसका जन्म सन् 1970 में हुआ है, कें विकास में प्रचुर संभावनाएं हैं। इसका प्रयोग भविष्य में विशेषतया 'ट्युमर विकिरण' तथा 'किमोथेरेपी' की अंदरुनी बातों को जानने में किया जाएगा, जैसे- एक अमुक थेरेपी किसी अंग को कैसे प्रभावित करता है, को जानने में प्रयुक्त किया जा सकेगा। आजकल 'न्युरोट्रांसमीटर' तथा 'तंत्रिका मनोरोग विज्ञान' संबंधी रोगो के शोध कार्यों में इसका काफी प्रयोग चल रहा है। प्रत्याशा है कि अगले कुछ दशकों में 'पाजीट्रॉन एमीटरों' के जैविक अनुबंध पर किये गये शोधकार्य अनेकों जैविक राज़ खोलने का काम करेंगे, जिससे चिकित्सीय विज्ञान में क्रांतिकारी परिवर्तनों की उम्मीद की जा सकती है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन के एक अध्ययन के अनुसार भारत में आज़ भी लगभग समस्त उपलब्ध पेय जल का लगभग 70 प्रतिशत भाग प्रदूषित है जिसके फलस्वरुप दो तिहाई बीमारियां पैदा होती हैं और इससे प्रतिवर्ष 730 लाख कार्य दिवस (Working Days) का नुकसान होता है, जो 600 करोड़ रुपए के बराबर है। औद्योगिक अपशिष्ट को सीधे नदी नालों में बहाने की प्रवृत्ति ने पारा, सीसा, आर्सेनिक, क्रोमियम आदि खाद्य-पदार्थ श्रृंखला का अंग बनते जा रहे हैं। प्रदूषित जल से मैदानों तथा घूम-फिर कर मवेशियों तथा उनके मांस और दूध आदि द्वारा मनुष्य के शरीर में प्रवेश पा जाता है और धीमी-गति के जहर के रुप में फैलने लगता है, तथा किसी अंग के निष्क्रिय अथवा लकवा ग्रसित होने की संभावना बनी रहती है। इस प्रकार की धीमी गति के जहर से छुटकारा पाने के लिए भी अनेक प्रयास चल रहे हैं। जीन चिकित्सा के क्षेत्र में भी अनेक चुनौतियॉ हैं, जिसमें त्रुटिपूर्ण जीनों का परिवर्तन है, इस दिशा में भी अनेकों साहसिक एवं सार्थक प्रयत्न किए जा रहे हैं। 'क्लोनिंग' के क्षेत्र में भी आशातीत सफलताएं मिली हैं और चूहे मेढक, बकरी आदि के क्लोन तैयार किए जा चुके हैं। यद्यपि भविष्य की अनेक वैज्ञानिक एवं सामाजिक व्यवस्था में संभावित गड़बड़ी के चलते, मानव क्लोनिंग पर प्रतिबंध लगाया जा चुका है, परन्तु इटली के भ्रूणविज्ञानी डा सवेरिनो 'मानव क्लोन' उत्पन्न करने के प्रयासों में संलग्न हैं। उनके किए गए दावों के अनुसार भविष्य में अनेकों क्लोनों के जन्म लेने की संभावनाएं व्यक्त की जा रही हैं।

चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में जो आज़ सबसे बड़ी उपलब्धि है वह 'स्टेम कोशिकाओं' के सृजन और प्रत्यार्पण तथा प्रत्यारोपण से संबंधित हैं। इस दिशा में सतत प्रयत्न किए जा रहे हैं जिससे इन कोशिकाओं के प्रयोग द्वारा मनुष्य के विभिन्न क्षतिग्रस्त अंगों, जैसे- गुर्दा, मस्तिष्क, यकृत, मांसपेशी, रक्त-कोशिकाओं आदि को परिवर्तित किया जा सकना संभव हो सकेगा। विसकांसिन विश्वविद्यालय में इसके प्रयोग से कृत्रिम रक्त कोशिकाओं को विकसित किया गया है, जो आयुर्विज्ञान के लिए एक मील का पत्थर साबित होगा। इसी प्रकार चूहों में इंसुलिन ऊतकों को विकसित किया गया है। भविष्य में मधुमेह (डायबेटीज़) रोग के निदान में स्टेम कोशिकाओं का प्रत्यारोपण आयुर्विज्ञान की एक नई पहल के रुप में देखा जा सकेगा।

टेली रेडियोलाजी विज्ञान की नई खोज है। इसमें एक्स-रे को फ़िल्म पर न लेकर सीधे कम्प्यूटर के हार्ड डिस्क पर संग्रहीत कर लिया जाता है, और इंटरनेट नेटवर्किंग के माध्यम से किसी अन्यत्र स्थान और विश्व के किसी भी अन्य चिकित्सक को उपलब्ध कराया जा सकता है। दिल्ली के निजी और सरकारी अस्पतालों में इसका प्रचलन आरम्भ हो चुका है। केन्द्रीय स्वस्थ्य मंत्रालय दिल्ली के सभी अस्पतालों को इस तकनीक से जोड़ने के प्रयास किए जा रहे हैं।

हृदय रोगी अक्सर इलेक्ट्रानिक पेस मेकर का उपयोग करते हैं, जो बैटरी से संचालित होती है। बार-2 बैटरी की देख-रेख करने की आवश्यकता होती है। अभी हाल में अमेरिकी वैज्ञानिकों को एक जैविक पेसमेकर को विकसित करने में सफलता मिली है, जिससे हृदय की चिकित्सा में एक क्रांतिकारी परिवर्तन की सूचना प्राप्त होती है। अमरिका के हॉपकिंस इंस्टीट्यूट के वैज्ञानिकों ने सूअर की हृदय कोशिकाओं में पोटैशियम के संतुलन में परिवर्तन करके प्राकृतिक रुप प्रदान करने में सफलता अर्जित की है। यह बायो-पेस-मेकर ऐसे रोगियों की चिकित्सा के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है, जो या तो काफी कमजोर होंगे अथवा कम आयु वर्ग के होंगे। यह प्रत्यार्पित शरीर की कोशिकाओं के अनुरुप ग्राह्य तथा समायोज़ित करने की क्षमता रखती हैं, जबकि इलेक्ट्रानिक पेसमेकर में ऐसा किया जाना संभव नहीं होता। इस खोज से हृदय रोगियों को एक आशा की किरण का संचार हुआ है।

अनेक शोध कार्य हो रहे हैं, जो अनेकों नई-नई संभावनाओं को जन्म दे रहे हैं। परन्तु यक्ष प्रश्न यह है कि क्या सबके लिए अच्छे स्वास्थ्य का सपना साकार हो सकेगा? इस संबंध में यही कहना समीचीन होगा कि आने वाला भविष्य ही बतायेगा कि यही इसका साक्षी बनेगा, जब अधिक से अधिक लोग साक्षर होंगे, अपनी दुनिया के विषय में जानेंगे, अपने अधिकारों और स्वास्थ्य के लिए जागरुक होंगे। हो सकता है कि आने वाला भविष्य इस प्रस्तुत कथन जिसमें आरोग्य की परिकल्पना तथा अमरत्व की संकल्पना की गई है- "असतो मा सद्गमय। तमसो मा ज़्योतिर्गमय। मृत्योर्माSमृतं गमय'।" को मूर्तरुप दे सकें। निम्न ऋगवैदिक ऋचा में यह प्रार्थना की गई है-

'अमापीवामप स्त्रिधमप सेधत दुर्मतिम्र, आदित्यासो युयोतना नो अंहसः। ऋगवेद (viii-xviii-x)

अर्थात हे अखंड नियमों के पालने वाले देवगणों! हमारे रोगों को दूर करो, हमारे दुर्मति का दमन करो तथा पापों को दूर हटा दो।